مئی سنہ ۲۰۱۲ء

ماہنامہ شعاع عمل لکھنؤ

قَالَ اللّٰهُ تَبَارَكَ وَتَعَالىٰ قَدْ جَاءَكُمْ مِنَ اللّٰهِ نُورٌ وَكِتَابٌ مُبِينٌ

بے شک تمہارے پاس اللہ کی طرف سے نور آیا ہے اور روشن کتاب





موسسۂ نور ہدایت، حسینیہ غفرانمآبؒ، چوک، لکھنؤ۔۳

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526
Postel Regd.No. SSP/LW/NP-75/2011-13 Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month

SHUA-E-AMAL
Lucknow

शुआ-ए-अमल
हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ

MAY 2012





NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION
Imambara Ghufran Maab, Chowk, Lucknow-3 (U.P.) INDIA, Phone : 2252230

बिस्मेही तआला

वर्ष 8 — अंक 11

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन की

इस्लामी, ज्ञान व शोध

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

मई 2012

शुआ-ए-अमल

"लखनऊ"

न्यास संस्थापन

15 जमादिलऊला 1424 हि० / 16 जुलाई 2003 ई०

पत्रिका विमोचन

15 जमादिलऊला 1425 हि० / जुलाई 2004 ई०

मिलने का पता

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

इमामबाड़ा हज़रत गुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक, लखनऊ - 3

Phone No: 0522-2252230 — 0522-4062731 Mobile No: 09335276180 — 09335996808

सै. कल्बे जवाद नक़वी प्रिन्टर, पब्लिशर और प्रोपराइटर ने मासिक शुआ-ए-अमल (उर्दू, हिन्दी) निज़ामी आफ़सेट प्रेस विक्टोरिया स्ट्रीट लखनऊ से छपवाकर आफ़िस नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन इमामबाड़ा गुफ़रानमआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड लखनऊ-3 से प्रकाशित किया। सम्पादक : सै० मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी 'असीफ़ जाएसी'।

Per copy 20/- Annual 200/-



R.N.I. No.
UPBIL/2004/13526



Postal Regd. No.
SSP/LW/NP-75/2008-10



WEBSITE:
www.noorehidayatfoundation.com
www.al-ijtihaad.com



E_mail:
noorehidayat@yahoo.com
noorehidayat@gmail.com

वार्षिक अंशदान

1- यूरोप, अमरीका, कनाडाः
80 अमरीकी डालर
2- ख़लीजी मुमालिकः
60 अमरीकी डालर
3- एशिया, पाकिस्तानः
40 अमरीकी डालर
4- पाकिस्तान ज़मीनी डाकः
20 अमरीकी डालर

लाइफ़ मेम्बरशिपः 4000/-

विषय सूची

मई 2012ई०
जमादिस्सानी 1433हि०

इस्लाम धर्म रक्षक हुसैन

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादकः मिर्ज़ा सज्जाद हुसैन

निःसंदेह, अल्लाही धर्म (इस्लाम) जिसको मनुष्यों तक पहुँचाने हेतु पैग़म्बर भेजे गए, धार्मिक पुस्तकें रची गयीं, धार्मिक आदेश लागू किये गये। जिसके कारण हज़रत नूह ने कठिनाइयाँ उठायीं, इब्राहीम ने कष्ट सहे, मूसा को विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ा, ईसा ने अपने विरोधियों का सामना किया। वह अल्लाही धर्म (इस्लाम) जिसको मानव-जाति तक पहुँचाने में हज़रत मुहम्मद[स०] ने आपत्तियों को सहन किया, विपत्तियों का सामना किया। हृदय पर कटु वचनों एवं शरीर पर पत्थरों की चोटों का खाना पसंद किया, वह इस्लाम जिसकी रक्षा करने में हज़रत मुहम्मद के चचा हमज़ा काम आए, उबैदा ने अपने प्राणों की बाज़ी लगायी, हज़रत जाफ़र के हाथ काटे गए एवं मुहम्मद के भ्राता आजन्म युद्ध करते रहे।

वही इस्लाम धर्म चारों ओर दृष्टि उठाकर अपने सहायक की खोज कर रहा था एवं पुकार-पुकार कर कह रहा था कि कोई मेरी सहायता एवं रक्षा करने वाला है उस समय जब कि 60 हिजरी में दमिश्क़ के राज्य सिंघासन पर यज़ीद विराजमान हुआ एवं इमाम हुसैन से भी अपने को धार्मिक अधिष्ठाता स्वीकार करवाने का इच्छुक हुआ।

हुसैन इससे भली भांति परिचित थे कि मुझसे यज़ीद को धार्मिक अधिष्ठाता स्वीकार करवाने का प्रमुख ध्येय क्या है। यदि केवल अरब देश के एक निवासी एवम क़ुरैश वंश के एक सदस्य होने के नाते मुझे यज़ीद की ख़िलाफ़त स्वीकार करने को कहा जा रहा होता, तो इतने यत्न प्रयत्न की आवश्यकता न थी जबकि समस्त अरब और हेजाज़ के निवासी यज़ीद को अपना धार्मिक अधिष्ठाता (ख़लीफ़ा) स्वीकार कर चुके थे तो एक हुसैन ने यदि यज़ीद को ख़लीफ़ा न भी माना था तो जन-तन्त्र के सिद्धान्तानुसार भी यज़ीदी राज्य का कुछ न बिगड़ता था, अकेले इमाम हुसैन वह भी अल्लाह-भक्त, संसार त्यागी, शाँन्ति-प्रिय एवं एकान्त-प्रेमी।

हुसैन का कोई मित्र ही नहीं, शत्रु भी यह न कह सका कि हुसैन ने अपने मदीने के निवास-काल में कभी कोई भाषण शाम के राज्य जहाँ का शासक यज़ीद था उसके ख़िलाफ़ दिया हो, कभी वहाँ की जनता को बहकाने और तोड़ने के लिए पत्र-व्यवहार किया हो अथवा किसी अन्य प्रकार का यत्न यज़ीद के विरोध में किया हो, किसी भी साधन द्वारा शांतिपूर्ण साम्राज्य को अस्त-व्यस्त किया जाए तो फिर ऐसी दशा में केवल एक यज़ीद को ख़लीफ़ा न स्वीकार करना, यज़ीद को क्या हानि पहुँचा सकता था जबकि अरब में अनगिनत विशाल अधिवेशन यज़ीद को ख़लीफ़ा मनवाने के लिए हुए हों, कितने ही उच्च प्रकार के साधनों के योग से सब को यज़ीद के ख़लीफ़ा मानने पर बाध्य किया गया हो किन्तु सहस्त्रों व्यक्तियों से फिर भी यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार करने का यत्न न किया गया।

फिर बनी हाशिम के वंश में अब्दुल्लाह बिन जाफ़र भी तो थे। मुहम्मद बिन हनफ़िया भी तो थे। उमर इब्ने अली और बिने अली तथा हुसैन के दूसरे भाई तो थे। उनमें से किसी को यज़ीद की ख़िलाफ़त को मानने पर विवश क्यों न किया गया? बस केवल हुसैन ही वह थे जिनसे यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार करवाने के लिए भगीरथ प्रयास किया जा रहा था।

इससे सुस्पष्ट है कि हुसैन से यज़ीद को ख़लीफ़ा मनवाने की बात केवल हुसैन का अरब-निवासी अथवा बनी हाशिम के वंश का एक व्यक्ति होने के नाते न था बल्कि आप से यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार करवाने का कारण हुसैन की एक विशेष विशेषता थी कि हुसैन रसूल के वंश की इज़्ज़त व सम्मान के प्रतिनिधि अली तथा मुहम्मद के उत्तराधिकारी हैं। हुसैन का यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार कर लेने का अर्थ यह था कि अप्रत्यक्ष रूप से हज़रत मुहम्मद ने यज़ीद के कार्यों, कर्मों एवं आचरणों को उचित मान लिया एवं संसार इस अशुद्ध विचार को सत्य मान बैठता कि यज़ीद का राज्य उचित एवं सत्य था (ये ज्ञात होना चाहिए कि यज़ीद के आचरण एवं चरित्र इस्लाम के प्रतिकूल थे एवं वह कायर, भोग-विलासी, मदिरा-प्रेमी एवं कुकर्मी था) अतएव जब हुसैन से भी यज़ीद को ख़लीफ़ा मानने को कहा गया तो हुसैन के विचार इन गहराईयों तक भी पहुँच गए।

उन्होंने समझ लिया कि मेरा यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार कर लेने का अर्थ ये है कि अली ने भी ऐसा किया और मेरा ऐसा करने का आशय यह है कि हज़रत मुहम्मद ने भी यज़ीद को ख़लीफ़ा मान लिया एवं मेरा ऐसा करने का भाव यह है कि सत्य से असत्य के सामने, वास्तविकता ने अवास्तविकता के सामने, प्रकाश ने अंधकार के सामने एवं धर्म ने अधर्म के सामने शीश नवा दिया। हुसैन को ज्ञात था कि यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार न करने का क्या परिणाम होगा किन्तु उनको ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इस्लाम धर्म की दृष्टि मेरे मुख की ओर है और वह ये देख रहा है कि मेरी रक्षा के कारण हुसैन किसी बलिदान अथवा त्याग पर तत्पर होते हैं या नहीं।

हुसैन परिचित थे कि यह वह धर्म है जो मेरे जन्मदाता एवं पालनहार अल्लाह ने मुझे अमानत स्वरूप दिया है यथाकारेण इसकी रक्षा करना मेरा धर्म है। ये धर्म मेरे नाना हज़रत मुहम्मद की आजन्म कठिनाईयों एवं कष्टों का परिणाम है अतएव मुहम्मद के पुत्र होने के नाते मुझे इस्लाम की रक्षा करना अनिवार्य है एवं इस धर्म की मौजूदगी मेरे पिता हज़रत अली की खड्ग का फ़ल है अतः अली के उत्तराधिकारी होने के कारण इसकी संरिक्षता मेरा कर्तव्य है।

निःसन्देह इस्लाम धर्म अनाथ था एवं उसकी सहायता करने वाला तथा उसके सिद्धान्तों का रक्षा-केन्द्र न इराक़ में था न हिजाज़ में न शाम में कोई शरण-स्थान था, प्रत्येक ओर से निराश होकर इस्लाम धर्म हुसैन की छाया में शरण ले रहा था एवं हुसैन ने यह निश्चय कर लिया था कि मैं प्राण दे दूँगा किन्तु इस धर्म की रक्षा करूँगा केवल प्राण ही नहीं प्राणों को तो रण-क्षेत्र में प्रत्येक योद्धा दे देता है बल्कि इससे भी मूल्यवान वस्तु अपने हृदय के टुकड़ों अपने प्राणों से प्यारे पुत्रों, भ्राताओं एवं अन्य सम्बन्धियों को भी धर्म पर निछावर कर दूँगा तथा इससे भी बढ़कर अपनी सम्बन्धी आदर्श महिलाओं का कारागार का दण्ड भोगी होना भी स्वीकार कर लूँगा।

हुसैन ने अपना अमूल्य बलिदान भी 61 हिजरी में मोहर्रम के मास में शुक्रवार के दिन एवं दसवीं तारीख़ कर्बला के मैदान में दिया। शहीदों के शव भूमि पर थे। हुसैन के शिविरों से अग्नि की ज्वालायें उठ रहीं थीं। हज़रत मुहम्मद की सम्बन्धित स्त्रियों को बंदी बनाने का सामान था तथा सत्य की जिन्हा पर ये शब्द थे ''निःसन्देह हुसैन धर्म की शरण देने वाले हैं, एवं हुसैन धर्म रक्षक हैं''।

इस्लाम और इंसानी हुक़ूक़

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
अनुवादकः सैय्यद सुफ़यान अहमद नदवी

(26)

इस से पहले यह बात बताई जा चुकी है कि इस्लाम में जो सख़्त सज़ाएं हैं वह एक समाज को सही ढंग से चलाने के लिए बहुत ही ज़रूरी हैं, मगर इसके साथ-साथ यह हक़ीक़त भी है कि जिन जुर्मों के बारे में यह सख़्त सज़ाएं हैं उनको साबित करने के लिए भी वैसी ही सख़्त शर्तें रख दी गई हैं, जिसकी वजह से इन जुर्मों का साबित होना बहुत मुश्किल हो गया है। बात आगे बढ़ाने से पहले ज़रूरी है कि लोगों के लिए यह बात साफ़ कर दी जाए कि इस्लाम में सज़ाओं की तीन क़िस्में हैं (1) पहली क़िस्म का नाम हुदूद है। इसमें इस्लाम की तरफ़ से सज़ा तै है। जैसे गर्दन उड़ाना, पत्थर मार कर ख़त्म करना, सौ कोड़े लगाना, कोड़े लगाना और पत्थर मारकर ख़त्म करना, कोड़े लगाना और शहर के बाहर निकाल देना, 80 कोड़े लगाना, हाथ काटना (2) कुछ जुर्म ऐसे हैं जिनकी सज़ा तै नहीं है जिनको ताज़ीरात कहते हैं। शरई हाकिम के ऊपर है कि वह खुद सज़ा तै करे (3) सज़ा की तीसरी क़िस्म क़िसास है, यह वह सज़ा है कि जिसको अंजाम देने का हक़ खुद मज़लूम को दिया गया है।

पिछले मज़मून में कई क़िस्से मिसाल के लिए बयान किये गए। जब जुर्म करने वालों ने खुद आकर अपना जुर्म क़ुबूल किया और खुद से सज़ा चाही। आप लोगों ने ख़बरों में पढ़ा होगा या कभी सुना होगा कि किसी ने अपनी बीवी को गुस्से में आकर क़त्ल कर दिया और बाद में थाने में हाज़िर होकर अपना जुर्म क़ुबूल कर लिया। कभी यह भी सुना होगा कि किसी ने अपने मासूम बच्चों को नशे की हालत में या गुस्से से पागल होकर या ग़रीबी से मजबूर होकर क़त्ल कर दिया और जब नशा उतरा तो पछतावे की आग से मजबूर होकर अपने को पुलिस के हवाले कर दिया, लेकिन आप ने यह कभी नहीं सुना होगा किसी की इज़्ज़त लूट कर या चोरी करके किसी ने अदालत में आकर खुद इक़रार कर लिया हो। लेकिन इस्लामी तारीख़ में बहुत से ऐसे वाक़िआत मिलेंगे कि जब मुजरिमों ने अपने होशो हवास में रहते हुए जुर्म किया, मगर अल्लाह को राज़ी करने के लिए अपने को सज़ा के लिए खुद ही आगे कर दिया, क्योंकि इस्लाम में दुनिया से ज़्यादा आख़िरत की अहमियत है, इसलिए उन गुनाह क़ुबूल करने वालों ने बहुत ही अक़्लमंदी और होशियारी का सुबूत देते हुए दुनिया की वक़्ती तकलीफ़ और परेशानी को बर्दाश्त कर लिया ताकि आख़िरत की हमेशा की तकलीफ़ से बच जाएं, क्योंकि दुनिया की सख़्त से सख़्त तकलीफ़ पहले तो यह कि वक़्ती है और दूसरी हक़ीक़त यह है कि यहाँ की बड़ी से बड़ी तकलीफ़ जहन्नम की तकलीफ़ों के मुक़ाबले में कोई हैसियत नहीं रखती।

रसूल[स०] का ज़माना है, एक औरत रसूल की ख़िदमत में हाज़िर हुई और क़ुबूल किया कि उसने ज़िना

जैसा बुरा काम अंजाम दिया है। जब सारी शरई शर्तें पूरी हो गईं तो रसूल[स०] ने उस औरत को पत्थर मारकर ख़त्म कर देने का हुक्म दिया। जब वह दुनिया से गुज़र गई तो हुज़ूर[स०] ने उसकी जनाज़े की नमाज़ का एलान फ़रमाया और ख़ुद इमामत की। किसी बुज़ुर्ग सहाबी ने दबी ज़बान से कहा ऐ अल्लाह के रसूल[स०] आप एक ज़िना करने वाली की जनाज़े की नमाज़ पढ़ रहे हैं? रसूलुल्लाह[स०] ने जवाब में फ़रमायाः जिसे तुम गुनाहगार कह रहे हो उसकी तौबा ऐसी है कि अगर मदीने के सत्तर आदमियों में बाँट दी जाए तो सबको नजात मिल जाएगी। रसूलुल्लाह[स०] ने किसी गुनाह करने वाले को पत्थर मारकर ख़त्म करने का हुक्म दिया जब वह शख़्स इस दुनिया से गुज़र गया तो कुछ मुसलमान उसे बुरा-भला कहने लगे। रसूलुल्लाह[स०] ने उन्हें सख़्ती से मना फ़रमाया और फ़रमाया कि "क़सम है अल्लाह की कि यह मरने वाला अल्लाह के नज़दीक मुश्क की ख़ुश्बू से ज़्यादा पसंदीदा और पाकीज़ा है।" रसूल[स०] के ज़माने में एक गुनाहगार को पत्थर मार कर ख़त्म किया गया। एक मुसलमान दूसरे मुसलमान दोस्त से बोला कि यह शख़्स एक कुत्ते की मौत मारा गया है। रसूलुल्लाह[स०] को ख़बर हुई। हुज़ूर[स०] ने उन दोनों को अपने पास बुलाया और अपने कुछ सहाबियों को हुक्म दिया कि इन दोनों को फ़ुलाँ जगह ले जाओ जहाँ एक सड़ी हुई लाश पड़ी हुई है और इन से कहो कि अपने दाँतों से उसका गोश्त काटें। उन दोनों ने घबराकर कहा ऐ अल्लाह के रसूल[स०] यह आप क्या हुक्म दे रहे हैं? हम एक नापाक मरे हुए का गोश्त अपने दाँतों से काटें। रसूलुल्लाह[स०] ने फ़रमायाः तुम लोगों ने उस पत्थर से खत्म किए गए शख़्स के लिए जो अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए वह इस नापाक मुर्दे से ज़्यादा नापाक हैं।

हज़रत अली[अ०] की ख़िलाफ़त के ज़माने में एक शख़्स ने अपने गुलाम के साथ बुरा काम किया। कुछ ज़माने के बाद ख़ुद मौला के पास आया और अपने बुरे काम को कुबूल करते हुए ज़िद की कि उसे सज़ा देकर पाक कर दिया जाए। हज़रत अली[अ०] ने उसे वापस जाने का हुक्म दिया। वह दोबारा आया और फिर सज़ा के लिए ज़िद की, हज़रत अली[अ०] ने उसे फिर वापस कर दिया। तीसरी बार आया मौला अली[अ०] ने इस बार भी उसे वापस कर दिया। जब वह चौथी बार आया यह कहता हुआ ऐ अली[अ०] मुझे पाक कर दीजिए। मुझसे बहुत ही ग़लत गुनाह हो गया है तो अब हज़रत अली[अ०] ने फ़रमाया कि रसूलुल्लाह[स०] ने इस काम के लिए तीन तरह की सज़ाएं तै की हैं। तुझे इख़्तियार है जिसे चाहे चुन ले। उसने पूछा ऐ अली[अ०] वह तीन सज़ाएं कौन सी हैं? फ़रमाया, (1) तलवार से गर्दन पर वार (2) हाथ-पैर बाँध कर पहाड़ के ऊपर से फेंक देना (3) आग में ज़िंदा जला देना। मुजरिम पूछ रहा है ऐ अली[अ०] कौन सी सज़ा सबसे ज़्यादा सख़्त और तकलीफ़ देने वाली है? हज़रत अली[अ०] ने फ़रमायाः आग में जलना सबसे ज़्यादा सख़्त है और तकलीफ़ देने वाला है। मुजरिम ने कहा मौला अली[अ०] मैं अपने लिए यही सज़ा चुन रहा हूँ। उसके कहने पर उसे जलाया गया। आज की माद्दा परस्त दुनिया के लिए यह वाक़िआ और मिसाल बहुत ही अजीब व ग़रीब है। आज अगर किसी अदालत में मुजरिम पर जुर्म साबित हो जाए और ख़ुद उस मुजरिम के रिश्तेदारों और वकीलों को यक़ीन हो जाए कि जज सज़ा देकर रहेगा। सज़ा का हुक्म लिखने के लिए जज साहब क़लम हाथ में उठा लें, उस वक़्त मुजरिम और उसका वकील जज साहब के सामने गिड़गिड़ाते हैं कि जज साहब आप हमारे इस मुजरिम को नर्म से नर्म सज़ा दीजिएगा। यहाँ

मुजरिम ख़ुद अपने लिए सख़्त सज़ा को चुन रहा है, क्योंकि उसे यक़ीन है कि इस सज़ा के बदले उसे आख़िरत में आरम मिलेगा। अब कहाँ हैं वह लोग जो इस्लामी सज़ाओं को जानवरों वाली, ज़ुल्म और इंसानियत के मुख़ालिफ़ सज़ाएं बताते हैं, जिनको आख़िरत के फ़ैसले, सज़ा और बदले पर यक़ीन है, उनकी नज़र में सज़ाएं मुसीबत नहीं नेमत और रहमत हैं।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 6 अप्रैल 2012ई०)

(27)

समाज के निज़ाम को चलाने और समाज में अम्नो अमान को बाक़ी रखने के लिए सख़्त सज़ाएं ज़रूरी हैं। इमाम अलीअ० ने दुनिया के सारे हुकूमत करने वालों को ख़िताब करते हुए फ़रमाया, ''अगर तीन चीज़ों को याद रखो और उन पर अमल करते रहो तो सारे दूसरे मामलों से बचे रहोगे और अगर इन पर अमल न करोगे तो चाहे कुछ करते रहो कोई फ़ायदा न होगा, (1)मुजरिम को सज़ा दो चाहे वह अपना हो या पराया (2)हर मौक़े पर क़ुरआन के हिसाब से हुक्म करो चाहे ख़ुशी का मौक़ा हो या ग़ुस्से का (3)जो भी बाँटो बराबरी के साथ बाटो (वसाएलुश्शीआ, जिल्द-18) जुर्म के हिसाब से सज़ाओं की अहमियत के बाद भी अगर मुजरिम ने जुर्म बार-बार नहीं किया और हाकिम समझता है कि सिर्फ़ समझाने से सुधार मुमकिन है, ख़ास तौर से जहाँ जुर्म का ताल्लुक़ अल्लाह के हुक़ूक़ या किसी ख़ास शख़्स से है वहाँ इस्लाम ने सज़ा को छोड़ कर माफ़ करने पर ज़ोर दिया है। इससे पहले कह चुका हूँ कि कुछ मुजरिम वह हैं जिन्होंने अल्लाह के हक़ को बरबाद किया है और कुछ वह हैं जो इन्सानों के हुक़ूक़ को बरबाद करते हैं। पिछले मज़मून में बयान किए गए वाक़िआत से अंदाज़ा हो गया होगा कि अल्लाह के हुक़ूक़ से जुड़े वाक़िओं में हाकिम को सज़ा देने या माफ़ करने का इख़्तियार शरीअत ने दे दिया है ऐसे मौक़ों पर शरई हाकिम ने सज़ा के बजाए समझाने के बाद माफ़ करने पर बस किया है। इस तरह से अगर किसी के ख़िलाफ़ किसी से जुर्म हो गया हो तो वहाँ भी मुजरिम को माफ़ कर देने पर सख़्ती से ज़ोर दिया गया है।

इस्लाम ने हमेशा माफ़ करने पर ज़ोर दिया है, जिसकी बेहतरीन मिसाल ख़ुद रसूलस० हैं। जिन्होंने सख़्त से सख़्त तकलीफ़ देने वालों को खुले दिल से माफ़ कर दिया था जिनमें उनके बहुत ही महबूब चचा हज़रत हमज़ा का क़ातिल वह्शी भी शामिल था। हज़रत अलीअ० का क़ौल है, ''अपने भाई के लिए सज़ा न माँगो चाहे उसने तुम्हारे मुँह पर मिट्टी ही क्यों न डाल दी हो।'' (तोहफ़तुल उक़ूल, पेज-78) एक जगह फ़रमाया, है, ''माफ़ न करना सबसे बड़ी बुराई है और बदला लेने में जल्दी करना सबसे बुरा गुनाह है।'' (ग़ररुल हिकम व दररुल केलम, 6766) किसी कमज़ोर इन्सान का किसी को माफ़ कर देना माने नहीं रखता, बदले की ताक़त रखते हुए अगर कोई माफ़ कर दे तो उस से अच्छा अल्लाह की नज़र में कोई अमल नहीं। और इसकी मिसाल ख़ुद इस्लामी हुकूमत को पेश करना है। इसलिए हदीस में आया है ''माफ़ी ताक़त की ज़कात है'', ''ताक़त की ख़ूबसूरती माफ़ कर देना है''। किसी ताक़तवर का बेहतरीन अमल माफ़ कर देना है। हज़रत अलीअ० कूफ़े की जामा मस्जिद में ख़ुतबा दे रहे हैं, लोग उठ-उठ कर मौला से तरह-तरह के सवाल कर रहे हैं। इल्म का समुन्द्र मौजें मार रहा है। एक ख़ारजी भी वहाँ बैठा हुआ था। इमामअ० के इल्म को देखकर अचानक पुकार उठा, ''अल्लाह इसे क़त्ल करे कितना बड़ा जानकार है यह''। लोगों ने उसे घेर लिया और चाहा कि उसे मारें। हज़रत

अली[अ०] ने लोगों को सख़्ती से मना किया। फ़रमाया कि इसने मुझे गाली दी है। और मैंने इसे माफ़ कर दिया। (जाज़ेबा व दाफ़ेआ-ए-अली, शहीद मुतह्हरी, पेज-1440)। जब 19 रमज़ान की सुबह को इब्ने मुल्जिम ने मौला के सर पर अपनी तलवार ने सख़्त वार किया तो मौला के वारिसों को ख़िताब करते हुए फ़रमाया, ''कल तक मैं तुम्हारे साथ उठता-बैठता था आज तुम्हारे लिए इबरत का सामान हूँ और कल तुम से जुदा हो जाऊँगा। अगर मैं ज़िन्दा रहा तो मुझे खुद क़िसास का इख़्तियार है। अगर दुनिया से चला गया तो अगर तुम लोग मेरे क़ातिल को माफ़ कर दोगे तो ख़ुदा के यहाँ मेरा दर्जा भी होगा और तुम सबको इस अमल का बदला भी मिलेगा।'' (नहजुल बलाग़ह, ख़ुत्बा-23)

इंसाफ़ करने के बारे में आज से चौदह सौ साल पहले हज़रत अली[अ०] ने जो ख़याल पेश किया है वह दुनिया की सारी अदालतों के लिए आज तक नमूना है। आपने फ़ैसला करने वालों से फ़रमाया, ''अगर जुर्म यक़ीन करने वाला न हो तो जहाँ तक हो सके सज़ा देने से बचो और मुल्ज़िम को आज़ाद कर दो क्योंकि माफ़ करने में ग़लती करना कहीं अच्छा है इस बात से कि सज़ा देने में ग़लती की जाए। (बिहारुल अनवार, जिल्द-40 पेज-292)। ज़ाहिर है कि अगर मुजरिम को आज़ाद कर दिया जाए तो उसे अंजाम तक पहुँचाने की गुन्जाइश है, लेकिन अगर किसी बेगुनाह को सज़ा दी जाए तो उसका इलाज मुमकिन नहीं। यहाँ मौक़ा है तो बता दिया जाए कि बराबर ख़बरें आ रही हैं कि आतंकवाद के इल्ज़ाम में जो मुस्लिम नौजवान गिरफ़्तार हुए थे वह अब धीरे-धीरे बेगुनाह साबित होकर आज़ाद हो रहे हैं, मगर पाँच साल, दस साल और चौदह साल जेल की दीवारों के पीछे रहने के बाद। यह चौदह साल जो उन बेगुनाहों ने जेल में गुज़ारे हैं अब दुनिया की कोई भी अदालत उसका बदला नहीं तै कर सकती। इमाम[अ०] का इरशाद है, ''अगर क़ाज़ी मुजरिम को माफ़ करने में ग़लती करे यह बेहतर है इस बात से कि वह सज़ा देने में ग़लती करे।'' (बिहारुल अनवार, जिल्द-40 पेज-292) Benefit of Doubt हमेशा मुल्ज़िम को मिलता है। जिस फ़ैसले तक दुनिया सदियों में पहुँची है वह बात मौला अली[अ०] पहले ही कह चुके हैं।

एक बार का वाक़िआ है कि हज़रत अली[अ०] के ग़ुलाम ने एक मुजरिम को तीन कोड़े ज़्यादा मार दिये, इमाम का चेहरा ग़ुस्से से लाल हो गया और अपने हाथ सेअपने ग़ुलाम के तीन कोड़े लगाए। (मोहम्मद बिन याक़ूब कुलैनी, अल-फ़ुरू मिनल काफ़ी, जिल्द-7 पेज-260) एक और जगह पर सज़ा देने पर लगे हुए शख़्स ने दो कोड़े मुजरिम को ज़्यादा लगा दिये तो इमाम[अ०] ने हुक्म दिया कि उसे भी दो कोड़े लगाए जाएं। (कन्जुल उम्माल, जिल्द-3 पेज-140) इसी लिए हमारी माँग है कि जिन पुलिस वालों ने झूटे मुक़द्दमे में बेगुनाह मुसलमानों को फांसा और जिनकी वजह से यह बेगुनाह बरसों जेल में क़ैद की मुसीबतें बर्दाश्त करते रहे। उन पुलिस वालों को भी उतनी ही सज़ा मिलनी चाहिए और यह बिल्कुल इंसाफ़ के हिसाब से है।

इस्लाम में उन लोगों की सख़्त सज़ा है जिन्होंने अवाम के माल (Public Fund) में चोरी की है। लेकिन अगर अल्लाह के हक़ के मुजरिम हैं या Victim कोई एक शख़्स है तो वहाँ माफ़ करने पर ज़ोर दिया जाएगा। लेकिन इसी के साथ-साथ जो जुर्म करने के आदी हों और जिनके सुधरने के बारे में मायूसी हो तो उनको हक़ीक़त में सज़ा देकर समाज को उनकी बुराई से बचाना, यह भी अदालत की ज़िम्मेदारी है। **(जारी)**

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 20 अप्रैल 2012[ई०])

निज़ामे ज़िन्दगी

आयतुल्लाहिलउज़मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
सम्पादनः नूरे हिदायत फ़ाउन्डेशन

पहला अध्याय
तालीम व तरबियत

जिन्दगी के निज़ाम (system) की बुनियाद

इसका इन्तेज़ाम कब से शुरू हुआ? मज़हब वाले इस सिलसिले में बड़ी दूर का पता देते हैं, वह कहते हैं कि जब हर इन्सान की रूह (आत्मा) का जिस्म (शरीर) से रिश्ता भी नहीं हुआ था, उस से वचन लिए गये थे। उसे "आ़लमे ज़र" के नाम से याद करते हैं और कुर्आन में इस इक़रार (वचन) का बयान मौजूद है। (आयत- *अलस्तो बेरब्बेकुम, क़ालू बला*) यक़ीनन मुझको और मेरे ऐसे बहुत से लोगें को वह इक़रार याद नहीं है लेकिन मैं नहीं कह सकता कि किसी इन्सान को वह याद नहीं हो सकता। अपना होश न रखने वाला किसी बात को भूल जाने वाला, ये हुक्म लगाने का क्या हक़ रखता है कि उसकी तरह सब भूल जायेगें। हो सकता है कि बड़े मज़बूत मन के और भांपने वाले ऐसे इन्सान हों जिन की रूह जिस्मानियत (शारीरिकता) के शिकन्जों में ज़ाहिरी तौर (प्रत्यक्ष रूप से) पर गिरफ्तार हो के भी उस "आ़लमे अलस्त" को और वहां के इक़रार को पूरी तरह याद रखती हों मगर मैं तो अपने सीमित और कमज़ोर मन की वजह से कह सकता हूँ कि मुझे वह इक़रार (वचन) याद नहीं फिर भी मालूम होना चाहिये कि एक चीज़ जो याद कर ली गई हो, हो सकता है बाद में भूल जाए और उसका याद किया जाना भी दिमाग़ में बाक़ी न हो मगर फिर जब वह सबक़ (पाठ) पढ़ाया जायेगा और याद करने की कोशिश की जाएगी तो उस पहली याद की मिटी हुई छाप इस मरतबा आसानी की वजह ज़रूर होगी और इतनी परेशानी उसमें नहीं होगी जितनी बिल्कुल किसी नये सबक़ के याद करने में होती हैं।

इस तरह *"आ़लमे अलस्त"* का होना ज़रूर इन्सान के मन को उनके आज के दौर (वर्तमान काल) में (खुदा के) जानने समझने और भक्ति के दर्जे से करीब करने का ज़रिया बन सकता है। लेकिन ये अक़ीदे से ताल्लुक़ रखने वाली बात है। अब जो इस जिस्म से पहले रूह के होने को ही न मानता हो और *'आ़लमे-ज़र'* को कोई चीज़ न समझता हो, वह मेरे इस बयान को बिल्कुल ग़लत और बे-बुनियाद समझेगा।

फिर आईए आगे बढ़ें और उस दौर का बयान करें, जब ये इन्सान माद्दी (शारीरिक) रूप में आता है यानि जब दुनिया में पैदा होता है। हम देखते हैं कि शरीयत के एहकाम ने इसकी पैदाइश के पहले ही से उसकी आने वाली (भविश्य) अ़मली ज़िन्दगी (Practical Life) को सुधारने की तरफ़ तवज्जो रखी है।

बियाह में, आने वाले वक़्त (भविष्य) का ख़याल: औलाद के फ़ायदे के लिए माँ का चुनाव

शरीयत ने इस इन्सान की ज़िन्दगी की भलाई का सुधार का इन्तेज़ाम तब से किया है जब अभी उसने इस दुनिया में क़दम भी नहीं रखा है। वह अभी किसी छिपे परदे में भी नहीं है बल्कि अभी इस बात का भी कुछ ठीक नहीं है कि वह आने वाले समय में 'हो'गा भी

या नहीं, अभी सिर्फ़ वह एक 'दूर की उम्मीद' की तरह है, और ये वक़्त वह होता है जब उसका बाप शादी करने का इरादा करता है। इसी वक़्त इस तरह की हिदायत है कि हर औरत के साथ आँखें बन्द करके वह शादी न कर ले बल्कि चुनाव से काम ले और ऐसी औरत और ऐसे घरानों में शादी करे जहाँ चाल-चलन और आदतों के लिहाज़ से शराफ़त और इन्सानियत का सत्त पाया जाता हो। इसमें किसी शक व शुब्हे की जगह नहीं कि बहुत से गुण विरासत के ज़रिये या अनुवांशिक (Generetive) तरीक़े से औलाद की तरफ़ चले जाते हैं। वह लोग जिन्हें जानवरों की ट्रेनिंग का शौक़ है इस क़िस्म के तजुर्बे लेते रहते होंगे कि एक छोटी क़िस्म के जानावर का ताल्लुक़ बड़ी क़िस्म के जानवर से पैदा करके किस तरह उसकी नस्ल को धीरे-धीरे ऊँचे दर्जे पर लाया जाता है।

इससे साफ़ मालूम होता है कि गुणों में विरासत का क़ानून चलता है फिर चाल-चलन और आदतें ये अक्सर स्वभाव का नतीजा होती हैं। ये और बात है कि वह बिल्कुल न बदलने वाले न भी हो बल्कि ताक़त के साथ उनका मुक़ाबला करने पर उनमें बदलाव हो सके लेकिन फिर भी किसी ख़ास तरह काम के लिए प्रकृति/Nature की चाह वह सच्चाई है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। जब माँ-बाप का प्राकृति मिज़ाज औलाद की तरफ़ जाता है तो ख़ूबियों और आदतों में समानता सामने आती है। इस वजह से ज़रूरत है कि माँ-बाप चाल-चलन के ऊँचे और पाक हों ताकि उनकी ख़ूबियों की परछाई औलाद के ऊपर पड़ सके यही वजह है कि इस मामले में शरीयत ने पाबंदियां लगाना ज़रूरी समझा है।

दुनिया में शादी-ब्याह के मामले में अलग-अलग हैसियतों से फ़र्क़ मिलता है। कभी ऊँची ज़ात, कभी नीची ज़ात देखी जाती है। यह बात हिन्दुस्तान के मुसलमानों में बहुत ज़्यादा पैदा हो गयी है। इधर किसी की बात छिड़ी, कहा गया वह तो नीच है, उसकी ज़ात ख़राब, वह बराबर वाला नहीं है। इस बँटवारे को इस्लाम धर्म ने बिल्कुल एतबार न करने के लायक़ रखा है।

यह यहूदी ईसाईयों की ज़ेहनियत थी कि वह बनी इस्माइल[अ०] (इस्माईल की सन्तान) को जिन में से रसूलल्लाह[स०] थे, अपने से कम दर्जे पर समझते थे। उनका ख़याल था कि हम बीवी की औलाद हैं और ये दासी की सन्तान हैं। उनको हमारे मुक़ाबले का हक़ नहीं है, मगर इस्लामी शरीयत ने ये आम एलान किया कि नस्ल जाति का फ़र्क़ भेदभाव कोई चीज़ नहीं है। (ये तो सिर्फ़ पहचान के लिए ख़ानदानों में बाँटा गया है इससे इज्ज़त में कोई फ़र्क़ नहीं आता) और अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद[स०] ने साफ़ कर दिया कि-

''कुरैशी को, दूसरों पर जो कुरैशी नहीं है और अरब को, दूसरों पर जो अरब नहीं है कोई फ़ख़्र गर्व नहीं है।'' कुर्आन में है-

तुम सब एक ही जान से हो- फिर फ़र्क़ कैसा? खुद रसूल[स०] ने अपनी बहुत क़रीब की अज़ीज़ ज़ैनब बिन्त (सुपुत्री) हजश का निकाह ज़ैद बिन (सुपुत्र) हारिस के साथ कर दिया जो देखने में एक गुलाम की हैसियत रखते थे और सबीआ बिन्तुल हारिस का निकाह मेक़दाद के साथ कर दिया।

इसी तरह माल और धन के लेहाज़ से फ़र्क़ जिसको आमतौर से शादी-ब्याह के मौक़े पर देखा जाता है। मज़ा तो ये है कि 'लड़की वाले' इस बात को देखें तो फिर भी सही है, क्योंकि लड़की की ज़िन्दगी, उसका रोटी-कपड़ा सब मर्द के साथ जुड़ा हुआ है लेकिन आज कल तो 'लड़के वाले' इस बात को पूछते हैं कि लड़की जायदाद वाली है या नहीं और वह कितने धनी घराने से है। ये बहुत अफ़सोसनाक ज़ेहनियत (मानसिकता) है। और कुछ लोग हुस्न और ख़ूबसूरती के आशिक़ होते हैं अब आजकल के ज़माने में अख़बारों में शादियों के लिए जो एलानात (विज्ञापन) होते हैं उनमें अक्सर खूबसूरती की बात होती है। शरीयत की शिक्षा में इन दोनों बातों को ध्यान में लाना ग़लत बताया गया है कि जो माल और ख़ूबसूरती को सिर्फ़ अपना मक़सद बनाएगा वह उन दोनों बातों से वंचित होगा।

शरीयत में किस लेहाज़ से फ़र्क़ भेद रखा गया

है? यहाँ विश्वास और कर्म के लेहाज़ से फ़र्क़ रखा गया है क्योंकि काफ़िर (अल्लाह को न मानने वाला) और मुस्लिम बराबर नहीं हैं और इनकी शादियां बिल्कुल नाजायज़ हैं, क्योंकि विश्वास और कर्म का असर औलाद पर पड़ना ज़रूरी है। इसी तरह बुरे चाल-चलन की और ग़ैर शरीफ़ानाा काम करने वाली औरतों के साथ शादी की मनाही है। कुर्आन मजीद में यह हुक्म दिया जा रहा है कि-

इसका मक़सद यह है कि बुरे कामों के जरासीम (Germs) अपने केन्द्र से लगने रोग की तरह बढ़ कर किसी साफ़ माहौल को भी मैला न बना दें।

"माँ का चुनाव" औलाद के फायदे के लिए है इसके लिए नीचे दी गई हदीसों पर ग़ौर करें -

इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] की रिवायत है कि रसूलल्लाह[स०] ने फ़रमाया-

अपने नुत्फ़ों के लिए जगह (अपने बच्चों के लिए माँ) की खोज में चुनाव से काम लो क्योंकि बच्चों पर नानिहाल का बराबर असर पड़ता हैं।

एक हदीस में इमाम जाफ़रे सादिक़[अ०] फ़रमाते हैं-

"ख़ुरासान (ईरान का एक प्रान्त) के लोगों में बहादुरी का गुण है और अरबों में सख़ावत (ख़ैरात) और रश्क (ईर्ष्या), लेहाज़ा अपने नुत्फ़ों के लिए समझ-बूझ कर चुनाव करो।" इस काम में सबसे ज़्यादा ध्यान चाल-चलन, गुण और आदतों का रखना है।

इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] फ़रमाते हैं-

"औरत गले का हार है जरा ग़ौर कर लो कि तुम कैसी औरत को गले का हार बना रहे हो।" इरशाद होता है- "औरत का कोई मोल नहीं यानि कोई चीज़ नहीं जो उसके बराबर हो सके, न भले चलन वाली औरत के लिए न कुकर्मी के लिए, अगर अच्छे कर्मों वाली औरत है तो सोना चाँदी से भी अच्छी है और अगर बुरे कर्मों वाली है तो मिट्टी भी उसके बराबर नहीं क्योंकि मिट्टी भी उससे अच्छी है।" ख़ूबसूरती किरदार की ख़राबी के साथ कोई चीज़ ही नहीं, इस को इन शब्दों में फ़रमाया है कि- "ख़बरदार! उन बाग़ों से बचते रहो जो घूरे पर उगे हुए हों।" पूछा गया कि इसका क्या मतलब है? फ़रमाया- "ख़ूबसूरत औरत बुरे चलन और किरदार के साथ" ये है पहले से शरीयत की वह व्यवस्था जो इन्सान की पीढ़ियों को सवाँरने के लिए पहले से की गई है।

निकाह के संस्कार में इन्सानी ज़ेहनियत का बनाव

शादी ब्याह आम तौर पर इन्सान के स्वभाव की ज़रूरत का नतीजा है, मगर यह इस्लाम का सूझबूझ वाला चलन है कि उसने शादी के मसले में इस तरह हदें, बन्धन और तरीके व क़ानून लागू कर दिये हैं। जिनके बाद वह एक फ़र्ज़ (कर्त्तव्य) और धार्मिक रस्म की सूरत से किया जाता है। इसका बड़ा राज़ ये है कि जो चीज़ सिर्फ़ जज़बात (भावनाओं) के तले की जाए उसके नतीजे की भलाई पर इन्सान को तवज्जो करने की कोई ज़रूरत ही महसूस नहीं होती और सिर्फ़ मन की चाहतों की वजह से उसे करना खुद ही उसके बेलगाम हो जाने का कारण होता है। लेकिन जब वह काम फ़र्ज़ और क़ानून की वजह से किया जाएगा तो इन्सान को उसके नतीजे की तरफ़ तवज्जो भी पैदा होगी और उसके सुधार की भी चिन्ता होगी। शादी के वक़्त से औलाद के भले को किस हद तक ध्यान में रखा गया है इसको आप उन दुआओं से समझ सकते हैं जिनके पढ़ने का इस मौक़े पर निर्देश है। ये दुआयें जिनका पढ़ना (ज़रूरी तो नहीं लेकिन) बहुत अच्छा है देखने में बिल्कुल मामूली चीज़ समझी जाती हैं लेकिन इन दुआओं में वह रूह छिपी होती है जो किसी अ़मल की असली बुनियाद है या इनमें उस फ़ायदे और मक़सद की तरफ़ इशारा होता है जो उस अ़मल में छिपा होता है। उनसे इन्सान के दिमाग़ में वे विचार बिठाए जाते हैं जिनका ध्यान रखा जाना शरीयत का मक़सद है।

अब देखिये इमाम ज़ाफर सादिक़[अ०] ने अबु बसीर की तरफ़ तवज्जोह करके फ़रमाया- "जब तुममें से किसी की शादी होती है तो उसे क्या करना चाहिए?" अबु बसीर ने कहा "मैं आप पर निछावर हो जाऊँ, मुझे नहीं मालूम" हज़रत ने फ़रमायाः "जब शादी का इरादा हो तो दो रकत नमाज़ पढ़ें और खुदा की हम्द (वन्दना) करे और कहे- (यानि) "ऐ ख़ुदा! मैं ब्याह करना चाहता

हूँ। ऐ ख़ुदा! तो (फ़िर) मेरे लिए औरतों में से उसे ठहरा दे जो सबसे ज़्यादा पाक चलन की हो और जो अपने निज की और मेरे धन की रक्षा करने वाली हो और अच्छे भाग्य वाली और शुभ हो और मेरे भाग्य में उससे एक पाक बेटा ठहरा जो नेक सज्जन हो और जो मेरे जीते जी भी और मेरे मरने के बाद भी मेरा अच्छा वारिस/उत्तराधिकारी हो।''

फिर जब शादी हो जाये और औरत को ब्याह कर घर लायें तो उसके माथे पर हाथ रखें और यह दुआ़ पढ़े - यानि ऐ ख़ुदा! तेरी किताब के मुताबिक़ मैने इससे शादी की है और तेरी ज़िम्मेदारी पर मैने इसको लिया है और तेरे तय किये हुए शब्दों के ज़रिए से मैने इसको अपने लिए जायज़ बनाया है। अब अगर तूने इसके पेट से कोई औलाद मेरे भाग्य में धरी है तो उसको बिल्कुल सही मुसलमान बनाना और उसमें शैतान को साझे का मौक़ा न देना।''

''सवीया'' शब्द के मानी है 'भरपूर'। इसका जैसा विशेषज्ञ आये, पूरापन उस लेहाज़ से भरोसे वाला होगा। *''ज़करन सवीया''* इसके मानी होंगे 'मुकम्मल लड़का' और यहां चूंकि *''मुसलेमन सवीया''* है, इसलिए मानी ये होंगे कि ''भरपूर मुसलमान'' जिससे इशारा अक़ीदे व कर्म दोनों के ठीक और पूरे होने की तरफ़ होगा। फिर कहा गया कि इसमें शैतान साझी न हो, इसके मानी ये हैं कि वह शैतानी रास्तों पर चलने वाला न हो यानि बुराइयों को करने वाला न हो। इन दुआओं के पढ़ने से इन्सान की ज़ेहनियत (मान्सिकता) बनती है और ये मक़सद मन में बैठ जाता है कि आने वाली औलाद को किस तरह का होना चाहिये।

जन्म के समय के हुक्म

अब वह वक़्त आया कि जब बच्चे का जन्म हुआ, उस वक़्त शरीयत की हिदायत है कि दाहिने कान में अज़ान कही जाये और बायें कान में एक़ामत। इसके मानी यह हैं कि सबसे पहले इसको पैग़ाम पहुँचाया जाये ख़ुदा के एक होने का, रिसालत (यानी मुहम्मद[स०] उसके भेजे हुए हैं) और फ़राएज़ के पूरा करने का। हो सकता है कि हम कहें कि इससे फ़ायदा क्या, जबकि वह हमको याद नहीं रहता। इसके बारे में मैं 'आ़लमे ज़र' की चर्चा में कह चुका हूँ कि हमें याद नहीं तो यह ज़रूरी नहीं कि किसी को भी याद न रहे, फिर बचपने के वाक़यों की याद रहने के दर्जे तो देखने और अनुभव के लेहाज़ से भी अलग-अलग हैं, यानि बहुत से लोगों को तीन चार बरस की बातें याद रहती हैं और कुछ को इससे कमसिनी की, फिर जबकि इसका कोई अक़्ली पैमाना नहीं और दर्जों का फ़र्क़ इसमें ज़ाहिर है तो हमें यह कहने का क्या हक़ है कि किसी को अपनी पैदाइश के बाद की बातें याद नहीं रह सकती।

फिर इसे यूँ क्यो न समझ लीजिये कि जैसे दुनिया के लोगों ने अपने चाव से मेल खाते शगुन तय किए हैं, जिनसे उनकी चाह ज़ाहिर होती है कि आने वाले वक़्त के हालात इस तरह हों। शरीयत ने उनकी मान्सिकता को बदलने के लिए अपनी तरफ़ से यह एक शगुन मुक़र्रर रखा है जिसका मक़सद इन्सान के दिमाग़ में इस आरजू का पैदा करना है कि यह बच्चा आगे चलकर इस रास्ते पर टिका रहेगा, और इन कर्त्तव्यों का पालन करेगा।

दूध पिलाने का इंतेज़ाम

प्रकृति ने बच्चे का खानपान दूध बनाया है। इसके लिए अक्सर ज़रूरत पड़ती है कि अन्नाओं या दाइयों के ज़रिये से दूध पिलवाया जाये और कभी बे ज़रूरत भी अमीर घरानों की औरतें खुद इस काम से परहेज़ करती हैं और अन्ना को नौकर रखती हैं। इस काम में शरीयत की तरफ़ से पहले तो यह ज़ोर दिया गया है कि माँ खुद दूध पिलाए और अन्ना (दूध पिलाने वाली औरत) रखी ही न जाये। जैसा कि अमीरल मुमिनीन[अ०] फ़रमाते हैं- ''कोई दूध जो बच्चे को पिलाया जाए उसके लिए उसकी माँ के दूध से ज़्यादा बरकत वाला नहीं है।'' इसकी वजह बिल्कुल ज़ाहिर है कि खानपान जिस हद तक मिज़ाज के मुनासिब होगा उसी हद तक उसका फ़ायदा ज़ाहिर होगा और यह खुली हुई बात है कि बच्चा जो अपनी माँ का हिस्सा जैसा है उसके लिए खुद उसी की माँ के दूध से ज़्यादा कोई चीज़ उसके मिज़ाज के मुनासिब नहीं हो सकती।

लेकिन अगर अन्ना रखने की ज़रूरत पड़ जाए या बिला ज़रूरत भी माँ अपने फ़र्ज़ काम को पूरा न करे और अन्ना रखे तो ज़ोर दिया गया है कि उस औरत को छाँट कर रखा जाएँ और हर एक का दूध उस बच्चे को न दिया जाए, क्योंकि उसका असर उस बच्चे के चाल-चलन और अ़मल पर पड़ेगा और वही स्वभाव उसमें रचा-बसा रहेगा। इसीलिए यहुदियों, इसाईयों और मजूसिया से दूध न पिलवाने पर बल दिया गया है, अगर इत्तेफाक़ से यह काम ज़रूरी हो तो बच्चे को उसे न दिया जाए कि वह अपने घर ले जाये बल्कि उसको बुलाकर अपने यहां रखा जाए और उस औरत को शराब व सूवर के इस्तेमाल से रोक दिया जाये। मक़सद यह है कि अगर वह इन चीज़ों का इस्तेमाल करेगी तो उससे खुद उसका खून तैयार होगा और दूध के रूप में आयेगा और वह उस बच्चे के जिस्म में जाकर उसका खून बन जायेगा, शरीयत को किसी सूरत में भी यह मंजूर नहीं है कि मुसलमान के जिस्म में यह चीज़ें शामिल हों। नासबी औरत से भी दूध पिलवाने की मनाही है और नासबी औरत वह है जो अहले बैत[अ०] से दुश्मनी ज़ाहिर करती हो, इसके अलावा उसके दूसरे गुणों का भी ख़याल करना ज़रूरी है ताकि बच्चे के गुणों पर कोई बुरा असर न पड़े।

अमीरुल मोमिनीन[अ०] फ़रमाते हैं- "ज़रा देख-भाल लो कि तुम्हारी औलाद को किस तरह की औरत दूध पिला रही है, इसलिए कि दूध से पैदा हुए नतीजों से ही लड़का जवान होगा।"

इमाम मु० बाकिर[अ०] फ़रमाते हैं- "कम अक़्ल औरत से दूध न पिलवाओ, इसलिए कि दूध चाल-चलन के एक जगह से दूसरी जगह ले जाने क कारण होता है और बच्चा दूध की ख़ासियतों (विशेश्ताओं) की तरफ़ खिंच जाता है।"

अमीरूल मोमिनीन[अ०] का इरशाद है- "दूध पिलाने के लिए उसी तरह चुनाव से काम लो जैसे शादी के लिए चुनाव करते हो, इसलिए कि दूध का असर कुदरती गुणों को दबा ले जाता है और तबियत बदल देता है।"

दूध बढ़ाई के बाद

जब बच्चे के 2 बरस पूरे हो जायें तो यह शरीयत से दूध पिलाने की आख़िरी मुद्दत (अवधि) है। खुद कुरान मजीद में है -सूरा बक़र आयत 233- माएँ अपने बच्चों को दो बरस दूध पिलाएं।

इस आयत से वह हुक्म भी ज़ाहिर है, जिस पर मैने पहले चर्चा की थी कि शरीयत की पहली चाह यही है कि खुद माँ अपने बच्चे को दूध पिलाये, क्योंकि इरशाद होता है कि "माँएं अपनी औलाद को दूध पिलायें पूरे दो बरस" - इसके मानी यह है कि अगर दो बरस के बाद कोई औरत बच्चे को दूध पिलाये तो शरीयत से जो दूध पिलाने के लिए जो हुक्म रखे गए हैं वह न लग पायेंगे। न वह इसकी माँ ठहर पाएगी, न यह उसकी औलाद इसकी भाई-बहन वग़ैरह, इस हुक्म में लड़के-लड़की की कोई खुसूसियत नहीं है, *"औलादहुन्ना"* की लफ़्ज दोनों के लिए एक जैसी है।

अब इसके बाद चार-पाँच बरस बच्चे को खेल-कूद लेने देना चाहिये यह ज़माना शिक्षा और आचार सिखाने का नहीं है, इसलिये कि अभी वह कुछ समझ ही नहीं सकता। बेशक इस बीच भी एक हद तक उन चीज़ो के बारे में देखभाल ज़रूरी है जिनकी अहमियत बहुत ज़्यादा है जैसे शराब वग़ैरह का इस्तेमाल न होने दें, और किसी दूसरे को नुक़सान न पहुँचाये, मगर यह चीज़ शिक्षा की हैसियत से नहीं है बल्कि यह ऐसा ही है जैसे जानवर अपना हो तो उसके ज़रिये से किसी को नुक़सान नहीं पहुँचने देना चाहिए, और शराब वग़ैरह से रोकना इस तरह है जैसे ज़हर सन्खया के इस्तेमाल से इस बच्चे को रोकना ताकि उसमें नुक़सानदेह जर्मस (किटाणु) और मारक ज़हर का असर पैदा न हो जाये। यह एक बाप या संरक्षक का निजी फ़र्ज़ है, बच्चे की तालीम से इसका कोई ताल्लुक़ नहीं है।

सिखाने का ज़माना और माँ-बाप की ज़िम्मेदारियाँ

जब बच्चा छः या सात बरस का हो, अब उस की सिखाने पढ़ाने की ज़रूरत है। ये ख़याल बिल्कुल ग़लत है कि एक इंसान सिर्फ़ अपने कामों का ज़िम्मेवार है बल्कि अपने औलाद की भी भलाई सुधार व सिखाना

उसका ज़रूरी फ़र्ज़ है। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि वह खुद अपनी ज़ात से तो बहुत अच्छे हैं, नमाज़ रोज़े के पाबन्द हैं और शरीयत के सारे हुक्मों पर चलते हैं, मगर अपनी औलाद की तरफ़ उन्होंने कोई तवज्जो नहीं की है ऐसे लोग यकीनन खुदा के सामने जवाबदेह हैं, बल्कि मुझे खुद उनके नेक अ़मल में शक है। क्योंकि उनकी ये जो शरीयत की पाबन्दी है वह शरीयत की अहमियत समझने की वजह से नहीं है क्योंकि अगर उन्हें शरीयत के फ़र्ज़ की अहमियत का एहसास होता तो वह कभी अपनी औलाद को इस तरह बेलगाम न छोड़ देते जबकि हम देखते हैं कि इन्हें बच्चे की मामूली-मामूली बातों से जिनका ताल्लुक़ इस जिन्दगी से है उसका तो बहुत ख़याल है, किसी वक़्त दोपहर को गरमी में और लू धूप में बच्चा बाहर निकलना चाहता है तो माँ-बाप डाँट देंगे, रोकेंगे और जबरदस्ती से काम लेंगे कि वह बाहर न जाये, क्यों? क्योंकि लू की गर्मी उसको तकलीफ़ न पहुँचाये- फिर इस गर्मी का इतना ख़याल, मगर आख़िरत के अज़ाब की कोई परवाह नहीं।

जहन्नम की आग के भड़कते हुए लूकों का कोई ख़याल नहीं वह आज़ादी के साथ अपनी औलाद को ऐसे रास्तों पर चलने देते हैं जो उन्हें खुदा के अज़ाब का मुस्तहक़ (लायक़) बनाते हैं। मालूम होता है कि उन्हें क़यामत के दिन के हिसाब और खुदा के हुक्मों पर चलने का सही एहसास नहीं है। फिर यह खुद जो शरीअत के पाबन्द नज़र आते हैं, इसको सिर्फ़ उनके माँ बाप में फ़र्ज़ के एहसास का नतीजा समझिये कि उन्होंने इन हुक्मों पर चलने का उनको आदी बना दिया था इसलिए वह इसकी पाबन्दी करते हैं, वरना खुद उनके दिमाग़ में इन हुक्मों की कोई ख़ास अहमियत नहीं है।

इससे ज़्यादा एतराज़ के क़ाबिल उन लोगों का तरीक़ा है जो अपने कामों से अपने बच्चों के लिए ग़लत मिसाल बनते हैं और बुराइयों के लिए उनकी हिम्मत बढ़ाने की वजह खुद ही होते हैं। मैं सच कहता हूँ कि उनके लिए अकेले में किसी जुर्म का कर लेना उतना बुरा नहीं है जितना अपनी औलाद की जानकारी में ऐसे बुरे काम का करना। अगर जवानी मे कोई बहक जाये तो ख़ैर, इस पर खुदा से तौबा व माफ़ी की उम्मीद रह सकती है, मगर अब औलाद के सामने बहुत ज़्यादा उसे अपने आप की देखरेख और कन्ट्रोल की ज़रूरत है। याद रहे कि अगर औलाद की तबाही उसके हाथों हुई और उसकी नस्ल खुद उसकी वजह से गुमराही में फँस गयी तो वह खुद तो दुनिया से उठ जायेगा लेकिन तब भी उसके नाम-ए-आमाल (कर्म-पत्र) में गुनाहों का सिलसिला बना रहेगा क्योंकि वह उन सब ख़राब नतीजों का जो उसके बाद ज़ाहिर हो रहे हैं ज़िम्मेदार है।

अब ग़ौर कीजिए कि औलाद के पालने पोसने लिए शरीयत ने किस तरह इंतेज़ाम किया है?

इमाम जाफर सादिक़[अ०] फ़रमाते हैं:-

''सात बरस तक बच्चे को खेलने दो और फिर सात बरस बिल्कुल अपना आधीन/दास बनाए रखो यानी वह क्या-क्या करता है उस पर कड़ी नज़र रखो।''

दूसरी हदीस में है-

''अपने बच्चे को खुली छूट दो यहाँ तक की उसकी छः बरस की उम्र हो, फिर सात बरस तक उसे बिल्कुल अपने साथ रखो।'' यह साल का फ़र्क़ इस वजह से है कि असल में उसके लिए कोई एक निश्चित उम्र नहीं रखी गयी है बल्कि उम्र का एक ज़्यादा क़रीब का अन्दाज़ा बताया गया है। मतलब यह है कि जब बच्चा कुछ समझदार हो जाये और उस पर सिखाने का असर पड़ सके, यह बात कुछ बच्चों में, पाँच या छः बरस ही में मिल जाएगी और कुछ के यहाँ सात बरस या उससे ज़्यादा में।

शुरु की शिक्षा

इस मुद्दत (अवधि) में एक तरफ़ तो बच्चे के कामों और बरताव को सही करना चाहिये दूसरी तरफ़ उसको शरीयत के हुक्मों और फ़र्ज़ की जानकारी देनी चाहिए, इसलिये कि इसके बाद जल्दी ही वह वक़्त आ जाएगा जब उस पर शरीयत के हुक्म लागू हो जाएंगे और वह फ़र्ज़ की ज़िम्मेदारी में बन्ध जाएगा। इसके लिए उसे पहले से तैयार होने की ज़रूरत है। लेकिन उसके साथ शरीयत ने दुनिया की जरूरतों की भी अनदेखी नहीं की है। **(जारी)**

मुख्य समाचार

अमरीका ईरान के सामने झुका

ईरान का पुर-अम्न एटमी प्रोग्राम क़ुबूल करने को तैयार

आयतुल्लाह ख़ामेना-ई के नाम ओबामा का ख़त

अमरीकी अख़बार ने इन्केशाफ़ किया है कि राष्ट्रपति ओबामा ने ईरानी सुप्रीम लीडर आयतुल्लाह ख़ामेना-ई को भिजवाए गए पैग़ाम में इशारा दिया है कि व्हाइट हाउस ईरान का एटमी प्रोग्राम कुछ शर्त के साथ क़ुबूल करने पर तैयार है। वाशिंगटन पोस्ट ने अपनी एक रिपोर्ट में दावा किया है कि अमरीकी राष्ट्रपति बाराक ओबामा ने तुर्क वज़ीरे आज़म तैय्यब उर्दगान के ज़रिए ईरान के सुप्रीम लीडर आयतुल्लाह ख़ामेना-ई को ख़त भेजा है जिसमें कहा गया है कि अगर तेहरान साबित कर दे कि उसका एटमी प्रोग्राम पुर-अम्न मक़ासिद के लिए है तो अमरीका उसे क़ुबूल कर लेगा। ख़त में वाज़ेह किया गया है कि ईरानी सुप्रीम लीडर आयतुल्लाह ख़ामेना-ई अगर हाल ही में किए गए इस दावे पर क़ायम रहें कि उनकी क़ौम कभी ऐटमी हथियारों के पीछे नहीं भागेगी तो अमरीका को ईरान के सिविलियन न्युकिलियर प्रोग्राम पर एतराज़ नहीं होगा। वाज़ेह रहे कि कुछ दिन पहले ईरानी सुप्रीम लीडर आयतुल्लाह ख़ामेना-ई ने जौहरी हथियारों को गुनाहे अज़ीम और यूरेनियम अफ़ज़ूदगी को तबाहकुन क़रार दिया है। रिपोर्ट के मुताबिक़ सियोल में राष्ट्रपति ओबामा ने तुर्क वज़ीरे आज़म से मुलाक़ात में यह ख़त उनके हवाले किया। उन्होंने ईरानी सुप्रीम लीडर को पहुँचा दिया है। अमरीकी राष्ट्रपति ने तुर्क वज़ीरे आज़म से कहा कि ईरान को एहसास होना चाहिए कि पुर-अम्न समझौते के लिए वक़्त तेज़ी से गुज़र रहा है और तेहरान को बातचीत के मौक़ों से फ़ायदा उठाना चाहिए। पैग़ाम में यह बात वाज़ेह की गई कि आया ईरान को पुर-अम्न मक़ासिद के लिए यूरेनियम अफ़ज़ूदा करने की इजाज़त होगी या नहीं।

प्रेस कांफ्रेंस से क़ाएदे मिल्लत का ख़िताब

15 अप्रैल 2012 को क़ाएदे मिल्लत मौलाना सैय्यद कल्बे जवाद ने हज़रत गंज में वाक़े इमामबाड़ा सिब्तैनाबाद में प्रेस कांफ्रेंस में कहा कि सेन्ट्रल गर्वनमेंट हुकूमत मुसलमानों के ख़िलाफ़ इस्राईल को खुश करने में लगी है जिसके तहत उसने पोटा और टाडा ख़त्म करने का एलान तो कर दिया लेकिन उसने मुसलमानों के ख़िलाफ़ इस से ख़तरनाक क़ानून बनाया है जिसमें हुकूमत की रज़ामंदी के बाद दफ़ा लगाई जाती है और इस दफ़ा में कई बेक़ुसूर मुसलमानों को गिरफ़्तार किया जा चुका है। क़ाएदे मिल्लत ने कहा कि इस से यह साबित हो जाता है कि मरकज़ी हुकूमत मुसलमानों को किस तरह फंसाने की साज़िश कर रही है। मौलाना कल्बे जवाद ने कहा कि रियासती हुकूमत की मदद की उम्मीद है जिसकी पहल अखिलेश यादव ने कर दी है उन्होंने दिल्ली में वज़ीरे आज़म से मुलाक़ात के दौरान काज़मी का मसला उठाकर मुसलमानों से हमदर्दी का इज़हार कर दिया है। क़ाएदे मिल्लत मौलाना कल्बे जवाद ने कहा कि अखिलेश यादव की बातचीत के बाद फ़िलहाल एहतेजाज मुलतवी कर दिया गया है लेकिन मरकज़ी हुकूमत की पॉलीसी को देखते हुए 29 अप्रैल को वज़ीरे दाख़ला के सरकारी निवास का दिल्ली और उत्तर प्रदेश के मुसलमान घेराव करेंगे। इस मौक़े पर मौलाना कल्बे जवाद ने ए०डी०एम० को वज़ीरे आला अखिलेश के नाम एक मेमोरेंडम भी सौंपा जिसमें उन्होंने कहा कि मरकज़ी हुकूमत के ज़रिए बनाए गए एक्ट "Unlawful Activities Prevention Act" को ख़त्म कराए जाने का दबाव बनाए। उन्होंने कहा कि इस एक्ट के ज़रिए मुसलमानों को ज़बरदस्ती क़ुसूरवार साबित करने की साज़िश की जा रही है इसलिए इसको ख़त्म किया जाना चाहिए। क़ाएदे मिल्लत ने कहा कि मरकज़ी हुकूमत सहाफ़ी काज़मी को भी इस एक्ट में फंसाने की साज़िश कर रही है जो नाक़ाबिले बर्दाश्त है। क़ाएदे मिल्लत ने कहा कि बेक़ुसूर गिरफ़्तार किये गये सभी मुसलमानों को फ़ौरी तौर पर रिहा किया जाए। इस मौक़े पर मौलाना कल्बे जवाद के साथ मौजूद सहाफ़ी काज़मी के फ़रज़ंद ने बताया कि उन्होंने दिल्ली में वज़ीरे आज़म मनमोहन सिंह, सोनिया गाँधी और अहमद पटेल से मुलाक़ात की कोशिश की लेकिन किसी ने भी मिलने का वक़्त नहीं दिया बल्कि उनके दफ़्तर से अफ़सोसनाक जवाब मिला। शौज़ब काज़मी ने कहा पुलिस ज़बरदस्ती एम०ए० काज़मी को मुलज़िम बनाने की कोशिश कर रही है और उनकी कोई सुनवाई नहीं हो रही है उन्होंने कहा कि जिस तरह से एक तरफ़ा कारवाई की जा रही है उस से वाज़ेह होता है कि यह किसी ख़ास इशारे पर है।

यहूदी आबादकारों का मस्जिदे अक़्सा पर धावा

इन्तेहा पसंद यहूदी आबादकारों ने 10 अप्रैल 2012 को क़िब्ल-ए-अव्वल मस्जिदे अक़्सा पर धावा बोल कर तलमूदी इबादात की अदायगी की। हरमे सालिस में रक़्स और सुरूर की महफ़िलों के इन्एक़ाद पर फ़िलिस्तीन भर में ग़म और ग़ुस्से की लहर दौड़ गई। उधर सहयूनी फ़ोर्सेज़ ने अल-ख़लील और जनीन से नौ फ़िलिस्तीनी शहरों को हिरासत में ले लिया है। इस्राईली फ़ौज ने यहूदी मज़हबी त्योहार के मौक़े पर मश्रिक़ी अल-क़ुद्स में सेक्योरिटी इन्तेज़ामात सख़्त कर दिये हैं और दूसरे दिन भी इन्तेहापसंद यहूदी आबादकारों के टोले मस्जिद पर धावा बोलकर अपनी इबादात अदा करते रहे। ग़ासिब यहूदियों ने ईदे फ़सह के मौक़े पर मश्रिक़ी अल-क़ुद्द को ओल्ड म्युनिसिपलिटी में जगह-जगह महाफ़िले रक़्स व सुरूर का इन्एक़ाद किया। मरकज़े इत्तेलाआत अल-क़ुद्स ने पैग़म्बर[स०] के मेराज की रहगुज़र मस्जिद अक़्सा के गार्ड के हवाले से बताया कि दर्जनों इन्तेहापसंद यहूदी मस्जिदे अक़्सा में दाख़िल होकर इबादात की अदायगी करते रहे। हरमैन शरीफ़ैन के बाद मुसलमानों के तीसरे मुक़द्दस तरीन मुक़ाम के मुहाफ़िज़ों ने मज़ीद बताया कि यहूदी आबादकार ग़ैर मुतवक़्क़ा तौर पर मराकशी दरवाज़े से मस्जिद में दाख़िल हुए। उनके हमराह सहयूनी पुलिस के दस्ते भी थे जो मस्जिद के अंदर गश्त करते रहे। मरकज़े इत्तेलाआत फ़िलिस्तीन के मुताबिक़ 10 अप्रैल को अलस्सुबह अल-क़ुद्स और सन 48 के मक़बूज़ा फ़िलिस्तीन से ताल्लुक़ रखने वाले शहरियों की क़लील तादाद मस्जिद में मौजूद थी इसलिए हमला आवर यहूदियों के सामने मुज़ाहमत न की जा सकी और वह खुले आम मस्जिद में तलमूदी इबादात और रुसूम अदा करते रहे। उधर फ़िलिस्तीनी सेक्योरिटी फ़ोर्सेज़ की जानिब से मग़रिबी किनारे से फ़िलिस्तीनियों की गिरफ़्तारियाँ आज भी जारी हैं। 10 अप्रैल की सुबह अल-ख़लील और जनीन के शहरों से कम अज़ कम नौ अफ़राद को हिरासत में लिया गया। क़दीम तारीख़ी शहर अल-ख़लील के ज़राए ने बताया कि हलहोल के इलाक़े में एक चेकपोस्ट के क़रीब चार अफ़राद को गिरफ़्तार कर लिया गया। पकड़े जाने वाले नौजवान में ख़ालिद ज़ियाब अश्शरबाती भी शामिल हैं। इसी तरह ओल्ड म्युनिसिपलिटी से एक और नौजवान और बारह साल के बच्चे को हिरासत में लिया गया। उन दोनों को छुरी रखने के इल्ज़ाम में पकड़ा गया। जनीन में भी इस्राईली फ़ौज की बड़ी तादाद ने मुख़्तलिफ़ इलाक़ों पर हमले किए और घरों में घुसकर बड़े पैमाने पर तोड़फोड़ की। अहलेख़ाना को मारने-पीटने के साथ-साथ बहीमाना तशद्दुद का निशाना भी बनाया गया। जनील के मग़रिबी इलाक़े में कई इलाक़ों में बारूदी सुरंगें नसब कर दी गईं। योबद के इलाक़े से एक नौजवान को गिरफ़्तार कर लिया गया। मक़ामी ज़राए के मुताबिक़ इस्राईली फ़ौज की दर्जनों गाड़ियों ने शहर की मश्रिक़ी कालोनियों पर हमला करके हवाई फ़ायरिंग की। इस मौक़े पर पच्चीस साला फ़िलिस्तीनी शहरी तारिक़ हसनी इब्राहीम अबुलहैजा के घर का मुहासरा किया। इसके बाद सहयूनी अहलकारों ने घर में दाख़िल होकर अबुलहैजा को हिरासत में लेकर तफ़्तीश के लिए ना मालूम मक़ाम पर मुन्तक़िल कर दिया है।

इस्राईल फ़िलिस्तीनी क़ौम के ख़ून पर क़ायम है:

रुक्न केनेसेट इब्राहीम सरसूर

इस्राईली केनेसेट में रुक्ने पार्लिमान इब्राहीम सरसूर ने 1948[ई०] में देरयासीन गाँव में की गई क़त्लो ग़ारतगररी को चौंसठ साल मुकम्मल होने पर जारी अपने बयान में कहा कि इस क़त्ले आम ने फ़िलिस्तीनी और अरब दुनिया की तारीख़ पर गहरा असर डाला, जिसके बाद फ़िलिस्तीनियों की बड़ी तादाद हिजरत पर मजबूर हो गई। उन्होंने कहा कि आज की इस्राईली रियासत देरयासीन की उसी क़त्ल व ग़ारतगरी की बुनियाद पर क़ायम है। आज भी उस वाक़िए के बाद मुल्क भर से हिजरत करने वाली औरतों और बच्चों समेत लाखों फ़िलिस्तीनी पनाहगुज़ींनी की ज़िंदगी बसर कर रहे हैं। मरकज़े इत्तेलाआत फ़िलिस्तीन के मुताबिक़ इब्राहीम सरसूर ने बताया कि हमला करने वाले यहूदी गिरोह अरगोन और लाही आज इस्राईली सेक्योरिटी फ़ोरसेज़ बन चुके हैं। हर अप्रैल की नौ तारीख़ को जहाँ एक तरफ़ यहूदी अपनी ईदे इस्तेक़लाल मनाते हैं तो दूसरी तरफ़ फ़िलिस्तीन 1948[ई०] के उस क़त्ले आम को याद कर रहे होते हैं। फ़िलिस्तीनी रहनुमा अब्दुल क़ादिर अल-हुसैनी की शहादत के अगले दिन होने वाला यह वाक़िआ फ़िलिस्तीनियों के नकबा (बड़ी मुसीबत) का ही एक टुकड़ा था। उनका कहना था कि देरयासीन क़त्ले आम सिर्फ़ एक वहूशियाना और भयानक वाक़िआ ही नहीं बल्कि फ़िलिस्तीनियों को अपनी सरज़मीन से ज़बरदस्ती हिजरत पर मजबूर करने की मुसल्लह तहरीक का आग़ाज़ था। ख़याल रहे कि नौ अप्रैल 1948[ई०] को दो यहूदी तंज़ीमों के इन्तेहापसंदों ने अल-क़ुद्स के क़रीबी गाँव देरयासीन पर हमला करके बेगुनाह निहत्ते ढाई सौ फ़िलिस्तीनियों को शहीद कर डाला था।